# शिकारी पौधे

दीपांजन घोष

शिकारी पौधे प्रकृति में अजूबा हैं। इनकी पोषण की विधि आम पेड़-पौधों से एकदम भिन्न होती है। मगर कथा-कहानियों में जैसा बताया जाता है, उस तरह से ये पौधे कभी शिकार नहीं करते। इनकी विशेषता है कि ये कीटों को फंसाने में माहिर होते हैं तथा इन्हें कीट भक्षी पौधे कहना बेहतर है। 1875 में चार्ल्स डार्विन ने वैज्ञानिकों का ध्यान इन कीटभक्षी पौधों की ओर आकृष्ट किया था।

कीट भक्षी पौधों को दो समूहों में बांटा जा सकता है - निष्क्रिय और सक्रिय। सक्रिय पौधों की पत्ती पर कोई कीड़ा बैठे तो फौरन यह पत्ती बंद हो जाती है, जैसे कि हम अपनी मुट्ठी बंद करते हैं। निष्क्रिय कीट भक्षी पौधों में कीटों के लिए एक फिसलन भरी ढलान होती है - यह घड़े नुमा एक रचना होती है। कीड़ा इस पर बैठे तो अन्दर फिसल जाता है। घड़े के अंदर उसे पचाया जाता है। इस घड़े के मुंह पर एक ढक्कन की भी व्यवस्था होती है। अलबत्ता, यह सम्भव है कि कुछ प्रजातियों में यह ढक्कन ही कीड़े को घड़े में गिराने का काम करता है। कीट भक्षी पौधों में कीड़ों को रिझाने के लिए कई तरह की व्यवस्थाएं होती हैं - भड़कीले रंग, मीठे रस और अन्य अजूबे।

एक सवाल यह है कि इन पौधों में सामान्य जड़-पत्तियां होने के बावजूद ये शिकार क्यों करते हैं? आम तौर पर ये पौधे बारिश में घुल जाने वाली, पोषक तत्वों के अभाव से ग्रस्त मिट्टी में पाए जाते हैं। या फिर नम व अम्लीय मिट्टी में भी पाए जाते हैं। इस तरह की दलदली मिट्टी में ऑक्सीजन की कमी होती है और इनमें कार्बनिक पदार्थों के आंशिक रूप से सड़ने के कारण कई अम्लीय पदार्थ बनते रहते हैं। इसलिए कार्बनिक पदार्थों को पूरी तरह विघटित करने वाले सूक्ष्मजीव इन जगहों पर नहीं पनप पाते। साधारण पौधे ऐसी अभाव की परिस्थिति में ज़िन्दा नहीं रह पाते। यहां कीट भक्षी पौधों की सफलता का राज़ यह है कि ये प्रकाश संश्लेषण के अलावा भोजन के लिए कीटों को भी दबोचते रहते हैं। इन कीड़ों की नाइट्रोजन प्रचुर काया इनके लिए पूरक आहार है। भारत में तीन कुलों के कीट भक्षी पौधे पाए जाते हैं - ड्रासरेसी, नेपेंथेसी और लेंटिबुलेरिएसी। आइए कुछ उदाहरण देखें।

## ड्रॉसेरा कुल

इस कुल में 4 जीनस हैं और इनमें से दो (*ड्रॉसेरा तथा एल्ड्रोवेन्डा*) भारत में पाई जाती हैं।

*ड्रॉसेरा* को हिन्दी में मुखजली कहते हैं। यह एक नाज़ुक छोटी झाड़ी है जो बंजर ज़मीन और दलदली स्थानों पर पाई जाती है। इसकी एक प्रजाति (*ड्रॉसेरा पेलाटा*) मैदानी इलाकों के अलावा, पहाड़ियों पर 3000 मीटर की ऊंचाई तक पाई जाती है। एक अन्य प्रजाति *ड्रॉसेरा बर्मानी* है जो मुख्य रूप से पूर्वी व मध्य भारत तक सीमित है। *ड्रॉसेरा इंडिका* पश्चिमी तट के खुले स्थानों पर बारिश के मौसम में देखी जा सकती है।

ड्रॉसेरा की प्रजातियों में पत्तियां एक ही जगह से गुच्छे के रूप में निकलती हैं। कभी-कभी ये रैडिकल तरह से भी लगी होती हैं। कुछ प्रजातियों में पत्तियां लम्बी व पतली होती हैं जबकि कुछ में चौड़ी। ड्रॉसेरा की पत्तियों की ऊपरी सतह पर बारीक लम्बे रोम होते हैं जिन्हें टेंटेकल कहते हैं। इन पौधों में गुलाबी या बैंगनी फूल भी लगते हैं।

ड्रॉसेरा कैपेन्सेस

कीड़े पकड़ने का काम पत्तियां ही करती हैं। पत्तियों पर उपस्थित टेंटेकल एक चिपचिपा पदार्थ छोड़ते हैं जो उनके सिरों पर बूंद के रूप में चमकता है - ऐसा लगता है कि धूप में शबनम की बूंदें चमक रही हैं। इसीलिए ड्रॉसेरा को 'सनड्यू' भी कहते हैं। जब इन चमकती बूंदों से आकर्षित होकर कोई कीड़ा पत्ती पर उतरता है जो वह इस चिपचिपे पदार्थ में चिपक जाता है - माखी गुड़ में फंसी रहे। अब टेंटेकल की बारी जाती है। ये टेंटेकल प्रोटीन संवेदी होते हैं। कीड़े की भनक लगते ही ये टेंटेकल मुड़कर उसे दबोच लेते हैं। इसके बाद पत्ती की सतह पर मौजूद ग्रंथियों से पाचक एन्ज़ाइम निकलते हैं और कीड़े को पचा डालते हैं। पाचन पूरा होने तक टेंटेकल सीधे नहीं होते।

ड्रॉसेरा का औषधीय महत्व भी है। कार्बनिक अम्लों और एन्ज़ाइमों की प्रचुरता के कारण इसकी पत्तियां दूध को दही में तब्दील कर सकती हैं। कहीं-कहीं पर पत्ती को कुचलकर फोड़ों पर लगाया जाता है। *ड्रॉसेरा इंडिका* की पत्तियों का रस कीलों पर भी लगाया जाता है। आयुर्वेद में *ड्रॉसेरा पेलाटा* का उपयोग स्वर्ण भस्म बनाने में होता है। *ड्रॉसेरा पेलाटा* से प्राप्त रंजक का उपयोग रेशम की रंगाई में किया जाता है।

ड्रॉसेरा कुल का एक अन्य कीट भक्षी पौधा *एल्ड्रोवेन्डा* है जिसे मलक्का झंगी कहते हैं। यह पानी में तैरता एक जड़ विहीन पौधा है। भारत के अलावा यह मध्य यूरोप और ऑस्ट्रेलिया में भी पाया जाता है। भारत में इसकी एक ही प्रजाति *एल्ड्रोवेन्डा वेसिकुलोसा* सुन्दरबन के नमकीन दलदल में पाई जाती है। यह तालाबों व झीलों में भी उगता है।

यह पौधा जड़ विहीन होता है; इसका तना पतला व नाज़ुक होता है और इस पर पत्तियां गुच्छों के रूप में लगी होती हैं। पत्तियों का डंठल थोड़ा-सा चपटा होता है। पत्ती सिरे पर थोड़ी अंदर धंसी होती है। पत्ती की मुख्य शिरा एक कब्जे की तरह काम करती है और पूरी पत्ती बीच से मुड़कर दोहरी हो सकती है। पत्ती के किनारों पर संवेदनशील दांतनुमा रचनाएं होती हैं जो थोड़ी-सी अंदर की ओर घूमी होती हैं।

पत्ती की मध्यशिरा पर कुछ संवेदनशील रोम होते हैं। ये

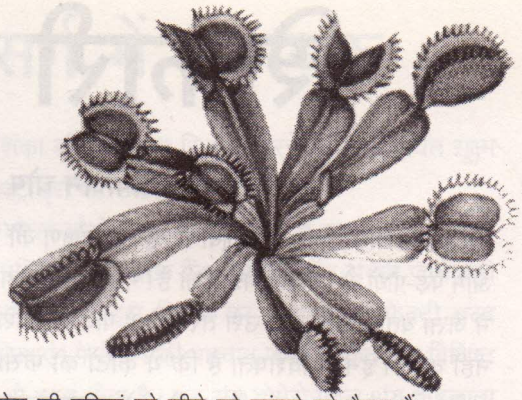

*ड्रॉसेरा की पत्तियां जो कीड़े को फांसने को तैयार हैं*

एक ट्रिगर की तरह काम करते हैं। जैसे ही कोई कीड़ा पत्ती पर बैठता है, पत्ती मुड़कर दोहरी हो जाती है और कीड़ा फंस जाता है। यह क्रिया पलक झपकते पूरी हो जाती है। पत्ती की सतह पर पाचक एन्ज़ाइम बनाने वाली ग्रंथियां होती हैं। कीड़ा पचने व पचा हुआ माल सोखे जाने तक पत्ती बन्द रहती है।

## नेपन्थीज़ कुल

इस कुल में मात्र एक जीनस *नेपेन्थीज़* है जिसकी करीब 70 प्रजातियां बोर्नियो, न्यू गिनी, मेडागास्कर, सेशेल्स, भारत, श्रीलंका और ऑस्ट्रेलिया में पाई जाती हैं। इनकी पत्तियों पर उपस्थित घड़ेनुमा रचना के कारण इन्हें 'पिचर प्लान्ट' या 'घटपर्णी', या 'कलशपत्री' भी कहते हैं। आम तौर पर यह ज़मीन पर रेंगता पौधा है मगर कभी-कभी यह सीधे खड़े रूप में भी मिलता है। यह अक्सर अत्यंत नम जलवायु में पाया जाता है।

भारत में इसकी एक ही प्रजाति *नेपन्थीज़ खासियाना* मिलती है। यह उत्तर पूर्वी क्षेत्र में अत्यधिक वर्षा वाली पहाड़ियों व पठारों में 100 से 1500

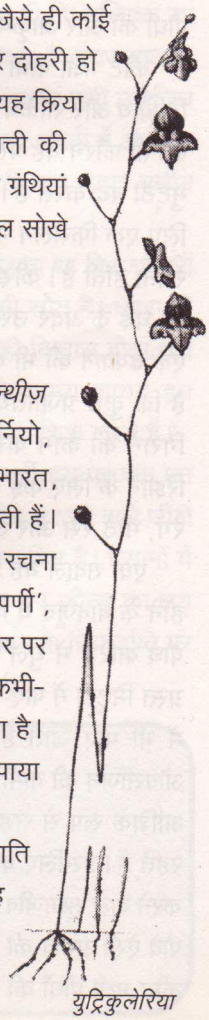

*युट्रिकुलेरिया*

एक कलश

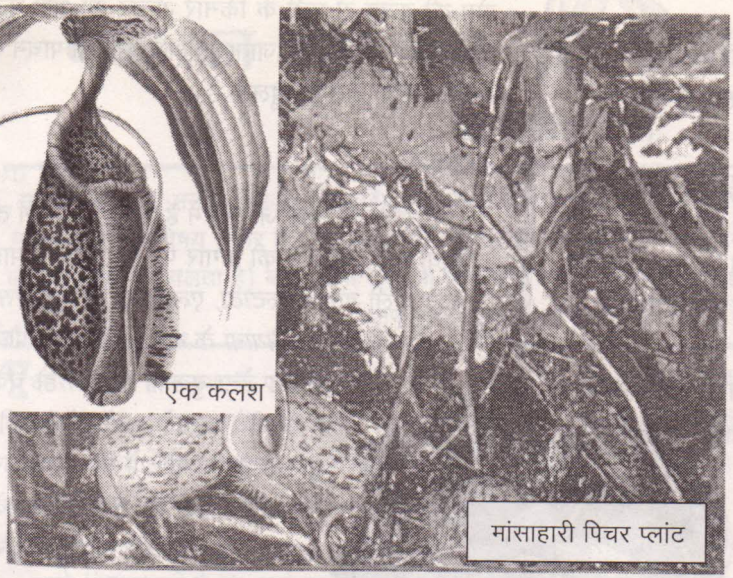

मांसाहारी पिचर प्लांट

मीटर की ऊंचाई पर दिखती है। खास तौर पर मेघालय में गारो, खासी और जैन्तिया पहाड़ियों में इसे देखा जा सकता है।

*नेपेन्थीज़ खासियाना* छोटी सी झाड़ी होती है। यह या तो ज़मीन पर बढ़ती है या किसी पेड़ के सहारे। इसकी पत्तियां घड़ों के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। पत्ती का डंठल चपटा होकर पत्ती जैसा दिखने लगता है। आगे जाकर डंठल पतला हो जाता है और एक स्प्रिंग जैसा आकार ग्रहण कर लेता है। यह स्प्रिंग किसी सहारे पर लिपट जाती है। घड़े या कलश लाल, हरे, पीले या रंग-बिरंगे होते हैं। इनकी लंबाई 5-10 से.मी. होती है और प्रत्येक कलश पर एक ढक्कन भी होता है।

ये रंग-बिरंगे कलश और उनमें भरा रस कीड़ों के लिए एक जानलेवा आकर्षण साबित होता है। कलश के मुंह के आसपास तथा ढक्कन की निचली सतह से शहद जैसा एक रस भी निकलता है। कीड़े इससे आकर्षित होकर पहुंचते हैं। कलश का अंदरूनी भाग बहुत चिकना होता है। एक बार कीड़ा इसमें गिर जाए तो उसका वापस निकलना असम्भव है। कलश के निचले भाग की दीवार में उपस्थित ग्रंथियों से पाचक रस निकलते हैं जो कीड़े को पचा डालते हैं। पचे हुए पदार्थ सोख लिए जाते हैं।

*नेपेंथीज़* स्थानीय रूप से चिकित्सा में भी काम आता है। इसके कलश तथा साथ में पचे हुए कीड़ों के मलबे को पीसकर पानी के साथ हैज़े के मरीज़ों को दिया जाता है। कलश के अंदर भरा तरल पदार्थ पेशाब सम्बंधी तकलीफों में प्रयोग किया जाता है। इसका उपयोग आंख की जलन में भी किया जाता है।

## लेंटिबुलेरेसी कुल

कीटभक्षी पौधों के इस कुल में 4 जीनस हैं। इनमें से *युट्रिकुलेरिया* और *पिंगीकुला* भारत में पाई जाती हैं।

*युट्रिकुलेरिया* को ब्लेडरवर्ट या हिन्दी में गृहणी कहते हैं। इसकी कोई 120 प्रजातियां दुनिया भर में पाई जाती हैं। भारत में इसकी तीस प्रजातियां देखी गई हैं। आम तौर पर ये मीठे पानी में और दलदली क्षेत्रों में मिलता है। कुछ प्रजातियां बारिश के मौसम में काई वाली चट्टानों पर और नम मिट्टी पर भी उगती हैं।

युट्रिकुलेरिया बहुत नाज़ुक पौधा है। इसमें दो तरह की पत्तियां पाई जाती हैं। एक तरह की पत्तियां सामान्य पत्तियों जैसी होती हैं और ये पौधे के निचले भाग में गुच्छे के रूप में पाई जाती हैं। दूसरे तरह की पत्तियां बहुत कटी-फटी होती हैं और इन पर छोटे-छोटे कलश लगे होते हैं। इस पर रंग-बिरंगे फूल भी लगते हैं।

*युट्रिकुलेरिया* में जलीय कीट इसके कलशों में फंसते हैं। कलश के मुंह की ओर संवेदनशील रोम पाए जाते हैं। मुंह में एक चूहेदानीनुमा फाटक होता है जो सिर्फ अंदर की ओर खुलता है। जब कोई कीड़ा इन संवेदनशील रोम को छूता है, तो फाटक खुल जाता है। इसी समय पानी की एक धार भी छूटती है और इस धार के साथ कीड़ा कलश में गिर जाता है। कलश में पानी भर जाने पर फाटक बन्द हो जाता है। कलश की अंदरूनी दीवार से पाचक रस छूटते हैं जो कीड़े को पचा डालते हैं। जब यह पचा हुआ पदार्थ सोख लिया जाता है तब खाली कलश नए कीड़े के स्वागत

के लिए तैयार हो जाता है।

*युट्रिकुलेरिया* की विभिन्न प्रजातियों का उपयोग खांसी, घावों की ड्रेसिंग तथा पेशाब सम्बंधी तकलीफों में किया जाता है।

*पिंगीकुला* या बटरवर्ट प्रायः उत्तरी यूरोप, मध्य एशिया और अमरीका में पाया जाता है। भारत में इसकी एक ही प्रजाति *पिंगीकुला एल्पीना* हिमालय में 3 से 4 हज़ार मीटर की ऊंचाई पर मिलती है। आम तौर पर यह नदी नालों के किनारे पाया जाता है।

*पिंगीकुला*

*पिंगीकुला* एक छोटा पौधा है जिसमें अत्यंत अल्पविकसित जड़ें होती हैं। पत्तियां अण्डाकार होती हैं तथा तने के निचले भाग में एक गुच्छे के रूप में निकलती हैं। पत्ती की सतह पर दो तरह के रोम होते हैं। कुछ रोम डंठल विहीन होते हैं। ये एक एंज़ाइम बनाते हैं। दूसरे किस्म के रोम डंठलदार होते हैं और ये एक चिपचिपा मक्खन जैसा पदार्थ बनाते हैं - इसी कारण इसका नाम बटर-वर्ट पड़ा है। प्रत्येक पौधे में एक ही सफेद फूल निकलता है। *पिंगीकुला* में पूरी पत्ती ही कीड़े पकड़ने का काम करती है। पत्ती पर बैठते ही कीड़ा उसके चिपचिपे पदार्थ में चिपक जाता है। पत्ती पर मौजूद संवेदी रोम की वजह से पत्ती के किनारे अन्दर की ओर मुड़ जाते हैं और कीड़ा फंस जाता है। अब यह पत्ती पाचन व अवशोषण के बाद ही खुलती है।

## संरक्षण

मगर शिकारी पौधे जोखिम में हैं। कुछ प्रजातियां तो दुनिया भर लुप्त होने की कगार पर हैं। भारत में पाई जाने वाली *ड्रॉसेरा पेल्टाटा, एल्ड्रोवेन्डा वेसिकुलोसा* और *नेपेंथीज़ खासियाना* के नाम जोखिमग्रस्त पौधों की रेड डेटा बुक में शामिल हो चुके हैं। बगीचे लगाने वालों और जड़ी-बूटियों के व्यापारियों के कारण इन पर संकट पैदा हो गया है। इसके अलावा इन प्रजातियों के प्राकृत वास का विनाश भी इनके लिए संकट का कारण है। नम भूमियों में तमाम किस्म के प्रदूषण ने इस संकट को बढ़ाया ही है।

कीटनाशक पौधों में ऐसे एंज़ाइम तंत्र पाए जाते हैं जो अन्य पौधों में नहीं होते। इस वजह से ये आजकल शोध का विषय बन गए हैं। ये पौधे चिकित्सा के क्षेत्र में काफी योगदान दे सकते हैं, बशर्ते कि ये बच पाएं।

*(स्रोत विशेष फीचर्स)*

## अगले अंक में

स्रोत जुलाई 2003
अंक 174

- क्या हम अतीत में नरभक्षी थे?
- नागफनी बिना पानी के कैसे ज़िन्दा रहती है?
- चीज़ क्या है, कैसे बनाई जाती है?
- जैव रसायन शास्त्र की शुरुआत
- भारत की ज्वलंत समस्या है पसीने की बदबू